यह संस्मरण एक शिक्षक की ओझल हो चुकी अमिट छाप की खोज है। यह अध्यापन के दौरान शिक्षक और शिक्षार्थी के आत्मीय और द्वन्द्वपूर्ण अनुभवों को सामने रखता है। क्या थे वे आत्मीय और द्वन्द्वपूर्ण अनुभव? ऐसा क्या था 'चित्रा मैम' में जिसे विद्यार्थी अब भी याद करते हैं?

चित्रा मैम

स्वरा भास्कर

'अमन चैरिटेबल ट्रस्ट' एवं 'प्रदान' में काम करने के बाद अभी मुंबई में रहकर लेखन और कलाकार के तौर पर कार्य कर रही हैं। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में लघु कथाएं एवं लेख प्रकाशित हुए हैं।

यह श्रद्धांजली नहीं है।

29 मार्च 2008 की दोपहर एक एसएमएस ने घोषणा की -- चित्रा मैम की आज मृत्यु हो गई। यह संक्षिप्त संदेश सरदार पटेल विद्यालय के पूर्व छात्रों के बीच घूम रहा था। मैं टिककर बैठी और फिर-फिर वह संदेश पढ़ा। तब जिम्मेदारी के साथ उसे मेरे सेलफोन पर सूचीबद्ध सरदार पटेल विद्यालय के अन्य पूर्व छात्रों को भेजा। यह ऐसा त्रासद समाचार था जिस पर आसानी से विश्वास किया जा सकता था। मुझे उनकी छोटी-सी कद-काठी याद आई। कुछ अपराध-बोध के साथ यह भी याद आया कि हम तब कैसे-कैसे मजाक बनाते थे जब चित्रा मैम लंब-तडंग लड़कों को अपने से आधे मीटर की दूरी पर देख घबरा जाती थीं या इस डर से पीछे हट जाती थीं कि कहीं वे उनके पैरों को ही न कुचल दें। एक बार हमारी कक्षा बांधवगढ़ अभयारण्य गई थी। वे हाथी पर चढ़ने की कोशिश कर रही थीं और उनका पैर पहली सीढ़ी तक नहीं पहुंच रहा था। हमने बड़े आनंद से उनके फोटो उतारे। सोलह साल की आयु में हम उत्साही, अति-आत्मविश्वासी, शेखचिल्लियों को यह कभी सूझा तक न था कि वे इतनी छोटी, नाजुक और निर्बल-सी हैं।

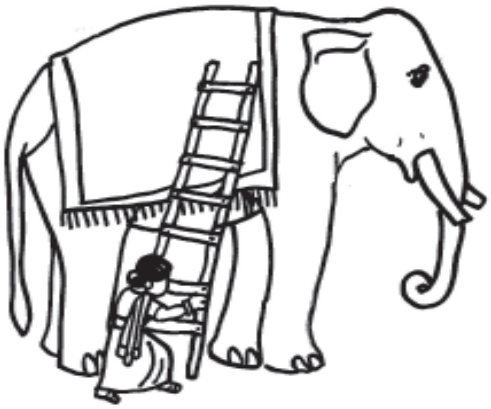

उसी दिन कुछ बाद में पता चला कि उनका एक जोड़ टूट गया और उन्हें बड़ी मात्रा में दर्द की दवाइयां दी गईं। इससे हुई अम्लीयता ने उन्हें पेट का ऐसा रोग दिया जिसके लिए ऑपरेशन जरूरी हो गया। इसी ऑपरेशन के बाद उनकी मृत्यु हो गई। उनकी बायोप्सी से पता चला कि उन्हें कैंसर था जिसका पता ही नहीं चल पाया था। यह इतना विचित्र और दुखद रूप से अजीब था कि एक जोड़, लिगामैंट का फटना ऐसी भयावह शक्ल ले ले। मुझे इतिहास की कक्षा का उनका एक कथन याद आया। हम आधुनिक भारतीय इतिहास के प्रारंभिक काल, औरंगजेब की मृत्यु के बाद के समय, से जुलाई की एक गर्म दोपहर में जूझ रहे थे। उस वक्त उन्होंने कहा था -- ''अर्थ तलाशने की कोशिश मत करो, संबंधों को देखो।''

विचित्र संयोग था कि उनकी मृत्यु ने उनके छात्र-छात्राओं के समूह के लिए तमाम चीजों के बीच संबंध उजागर किए -- स्कूली जीवन की उलझी स्मृतियां, किशोरावस्था के वर्षों के नाटकीय पलों की अनखुली गांठें, पुरानी स्मृतियों के जाल -- वे तमाम कष्टदायक प्रश्न जो आत्मविश्वासी किशोरों के सामने होते हैं। स्मृतियों के इस भुतहा महल के केन्द्र में थी एक नन्हीं-सी आकृति जो हमारे स्कूली जीवन का साझा सूत्र रही थीं -- चित्रा श्रीनिवास*।

* चित्रा श्रीनिवास, दिल्ली के सरदार पटेल विद्यालय में इतिहास की शिक्षिका थीं। वे एन.सी.ई.आर.टी. की कार्यकारी परिषद् की नामित सदस्य रहीं।

सिलसिला एक मृत्यु संदेश से प्रारंभ हुआ जो मैंने उनकी मृत्यु के बाद लिखकर उन छह मित्रों को ई-मेल किया था जिन्होंने कक्षा 11 और 12 में चित्रा मैम से इतिहास पढ़ा था और उन दो वर्षों में वे उसी 'होमरूम' में भी थे जिसकी वे प्रभारी थीं। पहले इस संदेश की कुछ ही प्रतिक्रियाएं आईं- सभी सकारात्मक, एक आग्रह के साथ कि इसे प्रकाशित करना चाहिए, एक अन्य जिसमें चित्रा मैम से जुड़ी विस्मृत कहानियां थीं। यह तब तक चला जब एक सुबह मेरे मृत्यु संदेश का सात पृष्ठ लंबा विवेचन मुझे मिला।

इसका लेखक उसी सात छात्रों के समूह का सदस्य था जो सरदार पटेल विद्यालय की मौखिक इतिहास परंपरा में सदा-सर्वदा के लिए अपनी कुख्यात शरारतों के कारण स्थान पा चुका है। इस चतुर, मजेदार, ईरिडियन ने हमारे व्यक्तिगत साझे से इतिहास संबंधी कुछ परेशान करने वाले मुद्दे उठाए। अगले छह दिनों तक इन सात सदस्यों ने दिल्ली, मुम्बई, काठमांडू तथा अमरीका स्थित अटलांटा शहरों के बीच 25 से भी अधिक ई-पत्रों की अदला-बदली की। एक व्यक्ति, एक शिक्षिका, एक संस्था तथा एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में चित्रा मैम पर विवाद, चिन्तन, स्वीकारोक्ति और मनन किया।

हमने पाया कि हम अनचाहे ही शिक्षक-छात्र संबंध, शहरी भारत में स्कूली शिक्षण, शिक्षाशास्त्रीय विधियों तथा बाल-शिक्षाशास्त्र तथा पालन-पोषण के बीच की रेखा, शिक्षण तथा विचारधारा आधारित सरकारी तंत्र, एक खास किस्म की नैतिकता का प्रजनन करने वाले स्थान के रूप में कक्षा तथा उत्पादक, जिम्मेदार नागरिक उत्पन्न करने वाले गर्भाशय के रूप में स्कूल, अनुशासित करने के माध्यम के रूप में शिक्षा तथा इस अर्थ में एक खास 'किस्म' के छात्र नागरिकों के निर्माण का माध्यम जैसे मसलों की चर्चा कर रहे हैं। और इसलिए यह एक मृत्यु संदेश नहीं है।

इतिहास शिक्षिका के रूप में वे बेहद नवाचारी और साहसिक थीं। नवाचारी उन उपायों के अर्थ में जिनका प्रयोग वे अपने चंचल छात्रों को किसी खास बिन्दु की प्रासंगिकता को समझाने के लिए करती थीं।

यह आलेख उन प्रश्नों में से कुछ को तलाशने की कोशिश करता है, चित्रा मैम की मृत्यु के बाद हम जिन्हें पूछने और एक-दूसरे से साझा करने पर बाध्य हुए। ऐसे प्रश्न और उत्तर जो निहायत वैयक्तिक संघर्षमय, आंशिक रूप से अनसुलझे तथा संभवतः समस्यात्मक भी हैं।

छोटी, नाजुक, साड़ी में लिपटी, खुले पन्नों और कॉपियों को थामे, चित्रा श्रीनिवास शोरगुल भरी अव्यवस्थित कक्षा में धमकती और कहती -- 'बिलकुल समय नहीं है, ढेर-सी पाठ्यचर्या खत्म करनी है।' जिन छात्र-छात्राओं ने सरदार पटेल विद्यालय में नवीं से बारहवीं तक उनसे इतिहास पढ़ा और जो ग्यारहवीं व बारहवीं कक्षा में उनके 'होमरूम' के छात्र भी रहे, उन्हें संभवतः यह आग्रह अब याद हो जो चित्रा मैम के सभी कामों में व्याप्त रहता था।

सच, वे कितना काम करती थीं। इतिहास पढ़ाने मात्र से कहीं अधिक। जिन छात्र-छात्राओं को उनके तीस वर्ष लम्बे शिक्षण करियर के दौरान उनसे इतिहास पढ़ने का सौभाग्य मिला उनकी स्मृति में यह अमिट छाप भी होगी कि इतिहास अतीत नहीं बल्कि वर्तमान है। उन्हें 2006 में केन्द्रीय सैकेण्डरी बोर्ड के शिक्षक पुरस्कार से सम्मानित किया गया था। जो तथ्य एक शिक्षक-शिक्षाविद् के रूप में उनके पराक्रम को कहीं सशक्त रूप से सिद्ध करता था, वह यह था कि वे सरदार पटेल विद्यालय की पारंपरिक व कुख्यात क्रिकेट टीम को आधुनिक भारत के इतिहास तथा समसामयिक विश्व इतिहास की ओर आकर्षित कर सकीं। इन 'लंब-तडंग गुण्डों' ने न केवल इन विषयों को पढ़ा बल्कि, 'छुट्टियों के गृहकार्य' के हिस्से के रूप में 'परियोजनाएं' भी तैयार कीं। कुछ ने तो बाद में अपना स्नातक अध्ययन इतिहास में 'ऑनर्स' के साथ किया।

इतिहास शिक्षिका के रूप में वे बेहद नवाचारी और साहसिक थीं। नवाचारी उन उपायों के अर्थ में जिनका प्रयोग वे अपने चंचल छात्रों को किसी खास बिन्दु की प्रासंगिकता को समझाने के लिए करती थीं। हमने प्राचीन वर्णाश्रम धर्म के बारे में तब जाना जब उन्होंने कक्षा का ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों के चार समूहों में बांट दिया और हमें इस स्पष्टीकरण के साथ छोटी नाटकीय प्रस्तुतियां करने को कहा-- आपस में कुछ यों अंतःक्रिया करो जो वर्णाश्रम धर्म के नियमों के अनुरूप हो। इतिहास उबाऊ होता है, इस रूढ़ धारणा को तोड़ने का प्रयास उन्होंने इतिहास को वैयक्तिक बनाने से किया। मुगल शासक हुमायूं से हमारा परिचय उसके 'दुर्घटना-ग्रसित' जीवन वृत्त को जानने से हुआ और तब से यह द्वितीय मुगल बादशाह मेरे लिए मध्यकालीन मूकाभिनय का एक ऐसा पात्र बन गया, जो चित्रा मैम के शब्दों में 'जीवन के अंदर और बाहर' लुढ़कता रहता था।

वे साहसी अध्यापिका थीं। हमेशा सीबीएसई पाठ्यक्रम तथा एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों द्वारा निर्मित ढांचे की सीमाओं को फैलाती थीं। उनका आग्रह रहता कि हम स्वयं अपने लिए सोचें। वे हमसे ढेरों परियोजनाओं पर काम करवातीं-- छोटे गौण शोध कार्य व प्रस्तुतियों की जिम्मेदारी सौंपती और सुनिश्चित करतीं कि कोई भी कोताही न करे। रचनात्मकता को हमेशा प्रोत्साहित करतीं। अगर हम 'एजटैक सभ्यता' की परियोजना में प्राचीन एजटैक नुस्खा जोड़ते या 'इजरायल-पैलैस्टाइन संघर्ष' की ऐतिहासिक जड़ों संबंधी परियोजना में अपने कूटनीतिक पिता की इजरायल यात्रा से लाए गए चित्र या सियोनवादी (जियोनिस्टिक) प्रतीक वाले ब्रोच जोड़ते तो अधिक अंक देती।

हर साल गर्मियों की छुट्टियों के दो दिन पहले वे पुस्तकों की सूची पकड़ातीं। इस सूची को बनाने में वे काफी समय लगाती थीं। वे सावधानी बरततीं कि अधिकांश किताबें कथा-साहित्य की हों जो छात्रों को कक्षा में पढ़ाए गए अध्यायों से संबंध बनाने और उस सूचना को वैयक्तिक बनाने में सहायता करें।

इतिहास की कक्षा का अतीत से उतना लेना-देना न होता पर वर्तमान से हर तरह का जुड़ाव रहा। वे निर्धारित पाठ्यपुस्तकों से परे जातीं, उनके भाषणों में विश्व नेताओं संबंधी किस्से और गप्पों की छौंक होती, समयामयिक राजनीति व समाज, स्मारकों, दीर्घाओं व अजायबघरों की यात्राओं का उल्लेख होता। हमें यह पता ही नहीं चला कि जिसे हम नितांत 'स्वाभाविक' समझते थे उन्हीं पर प्रश्न उठा रहे हैं। उन्होंने साफ-साफ कहे बिना ही हमें रूढ़-छवियों को पहचानना सिखाया, इतिहास की 'निर्मित' प्रकृति तथा इतिहास 'लेखन' की राजनीति के विषय में आगाह किया। इस हद तक कि ग्यारहवीं व बारहवीं कक्षा में हम 'राष्ट्रों' तथा राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख दृष्टिकोणों की निर्मित प्रकृति के विषय में चर्चा करने लगे। हमें यह अहसास भी आंशिक ही था कि हम 'विवेचनात्मक होना सीख रहे हैं।'

'अखबार पढ़ा करो, अखबार पढ़ने ही चाहिए तुम्हें' यह गुहार वे लगातार लगातीं और तब जब उन्हें यह आशंका हुई कि हम दरअसल अखबार पढ़ते ही नहीं, उन्होंने कक्षा में प्रतिदिन, बारी-बारी हमसे अखबार की सुर्खियों तथा समाचारों के सार संक्षेप पढ़वाना प्रारंभ किया। न जाने कितने कालांश हमने उस दिन की खबरों पर चर्चा करते बिताए और हिटलर की 'बिलट्जक्रीग' पृष्ठ 118 पर ज्यों की त्यों पड़ी रही। तब तक, जब तक उन्हें समय-सारिणी की वास्तविकता का ध्यान अगली कक्षा की घंटी से अचानक न आ जाता। हम उल्लास से भर उन्हें अगले दिन किसी समसामयिक विषय पर 'कक्षा चर्चा' की ओर प्रलोभित करने की योजना बनाते।

कालांश समाप्ति की घंटी चित्रा मैम की जानी दुश्मन थी। उनके शिक्षण काल के तमाम वर्षों में उसने उन्हें उनकी तरह से पाठ्यक्रम पूरा करने की, जितनी वे चाहती उस सबको संतोषजनक रूप से बताने और सभी सह-संबंधों की ओर संकेत करने की अनुमति कभी नहीं थी। साल-दर-साल हम, जनवरी के अंत में अतिरिक्त कक्षाओं की लम्बी दौड़ शुरू करते। वे हमें भरोसा दिलातीं कि पिछले साल ठीक इसी समय चार अध्याय बचे थे, जबकि इस बार सिर्फ साढ़े तीन ही हैं। हममें से शायद किसी को यह अहसास पर्याप्त रूप से नहीं हुआ होगा कि वे अपने अध्यापन में हर साल छात्रों द्वारा बोर्ड परीक्षा के लिए रटकर वमन किए जाने वाले नोट्स से कहीं अधिक व ठोस शामिल करने के लिए कितना श्रम करती थीं। यह उनके प्रयासों का ही परिणाम था कि कक्षा के 50 फीसद छात्र इतिहास में 70 प्रतिशत से अधिक और कई छात्र 80 प्रतिशत से अधिक अंक उस वर्ष की परीक्षा में हासिल करते थे। पर फिर, उनके ही शब्दों में 'अंक सब कुछ नहीं होते।'

निष्ठावान धर्मनिरपेक्ष व्यक्ति होने के नाते वे लगातार हिन्दू दक्षिणपंथियों द्वारा इतिहास के विषाक्त करने, उसे तोड़-मरोड़ कर समसामयिक राजनैतिक कार्यक्रमों के अनुरूप फिट बैठाने की चेष्टाओं की भर्त्सना करतीं। फिर भी अकादमिक पड़ताल में वे खुले दृष्टिकोण को बनाए रखतीं और अपने छात्रों को अभिव्यक्ति का पूरा अवसर देतीं। उनके राजनीतिक मतों के आधार पर उन पर कोई फैसला सुनाए बिना उनसे समस्तरीयों की तरह परिचर्चा करतीं। इसी फैसला-हीन, तार्किक व विवेकपूर्ण आदान-प्रदान के कारण ही हममें से एक का बौद्धिक व राजनीतिक मत हिन्दू दक्षिणपंथियों से विलग हुआ-- 'यह चित्रा मैम की भेंट थी' उसने मृत्यु संदेश पर अपनी प्रतिक्रिया में लिखा।

छानबीन का यह भाव, सवाल उठा पाने की क्षमता ही उनके लिए किसी भी शिक्षा का आधार थी। हम सवाल पूछते रहें इसे सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने 'होमरूम' शिक्षिका रूप में एक कक्षा पुस्तकालय शुरू किया। रुचियों को साझा करने

का सत्र भी उन्होंने शुरू किया, जिसमें बारी-बारी सभी छात्र अपने रुचि के विषय पर सूचनाएं तैयार करते और पांच मिनट की प्रस्तुति देते। जरा उनकी घबराहट की कल्पना करें जब उन्होंने पाया कि हमसे कुछ अधिक सृजनात्मक ने ''पादने, दुनिया के विभिन्न पादों, डकारों, डकारों की विविध सांस्कृतिक अभिव्यक्तियों, डकार से किसी के चरित्र का पता लगाने...' आदि पर जानकारी बांटना शुरू कर दिया।

होमरूम शिक्षिका की भूमिका में चित्रा मैम ने बड़ी चुनौतियों का सामना किया और इतिहास कक्षाओं में वे जिस 'आत्मविश्वास', 'उत्साह', 'चातुर्य' तथा 'रचनात्मकता' की प्रशंसा करतीं, उसके तमाम अन्य उपयोग हमने उन्हें दिखाए। चित्रा मैम और हम सब यों जूझते रहे, कभी एक-दूसरे के साथ और कभी एक-दूसरे के विरुद्ध। होमरूम शिक्षिका के रूप में वे एक चिंतित पालक से कम न थीं। बारहवीं का उत्साही, अति-आत्मविश्वासी उस सबसे कैसे निपटेगा जो वयस्क दुनिया उनके मुंह पर उछालेगी, इसको लेकर वे चिंतित रहती थीं। वे सरदार पटेल विद्यालय की सुरक्षित दुनिया के बाहर आश्रय विहीन जगत में तमाम तरह के खतरों की कल्पना करती थीं।

अगर शिक्षाशास्त्रीय सिद्धांत कोई ऐसी सीमा रेखा खींचते हैं जहां शिक्षकों को छात्रों की फिक्र करना बंद कर देना चाहिए, क्योंकि अन्यथा वे माता-पिता के क्षेत्र में घुसपैठ कर रहे होंगे तो वह रेखा चित्रा मैम ने देखी ही नहीं थी। वे लगभग माता समान भाव से हमें लेकर घबरातीं, हमारे लिए महत्त्वाकांक्षी रहतीं। हालांकि हमारे अच्छे प्रदर्शन में 'और' सफलता के प्रति उनकी व्यक्तिगत दिलचस्पी मन को छूने वाली थी लेकिन उसकी सघनता हमें हैरान भी करती थी। हम कल्पना करने की चेष्टा करते थे कि वे हमें लेकर इतना डरती क्यों हैं। हम अटकल लगाते कि इसका कारण उनका निःसंतान होना तो नहीं है।

दिल्ली विश्वविद्यालय, जहां हममें से अधिकांश को जाना था, उनके लिए गंभीर खतरों, अनेकों भ्रामक प्रलोभनों-- जैसे मादक द्रव्य, शराब, रैगिंग, लिंग आधारित उत्पीड़न, भावनात्मक उतार-चढ़ाव, पेशे संबंधी मुद्दों से अटा पड़ा था, सो वे उसे इसी रूप में हमारे समक्ष रखतीं। उन्होंने कई होमरूम कालांश किशोरावस्था के इन्हीं मुद्दों पर चर्चा की चेष्टा में उन प्रतिक्रियाशून्य, अहंकारी, अति-कुशल किशोरों के साथ लगाए, जो उनके भयों की खिल्ली उड़ाते, पानी के

छानबीन का यह भाव, सवाल उठा पाने की क्षमता ही उनके लिए किसी भी शिक्षा का आधार थी। हम सवाल पूछते रहें इसे सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने 'होमरूम' शिक्षिका रूप में एक कक्षा पुस्तकालय शुरू किया।

नलकों के सामने उनकी नकलें करते। जिन्हें यह लगता कि वे अब सतरह बरस के हो गए हैं और 'डेटिंग' तक शुरू कर चुके हैं इसलिए वे सब कुछ जानते हैं।

इन भाषणों के माध्यम से वे हमें यह बताना चाहती थीं कि हमें जो सही हो उसके पक्ष में खड़े होना सीखना होगा, चाहे कैसे भी सामाजिक या साथी/समूह के दबाव हम पर क्यों न हों। लगता यह है कि हर बार उनका सामना उस वस्तु से हुआ जिसकी थाह तक वे नहीं पा सकीं। यह थी उन (अधिकांश) उच्च मध्यवर्गीय भारतीय किशोरों की अस्पष्ट व अब भी गढ़ी जा रही नैतिकता, जो किशोरों पर प्रभाव के समस्त इतिहास में सबसे अधिक परिघटनाओं से प्रभावित हो रहे थे।

अतः वे बेहद असहज होकर कठोरतर नैतिक फैसले के साथ हमारे 'अस्पष्ट किशोर आचरण' की निंदा करतीं। खासकर जब वे हममें से कुछ को परीक्षाओं में नकल करते पकड़तीं या सिगरेट या शराब पीने का प्रमाण पातीं या बाघ अभयारण्य दौरे के दौरान सुबह साढ़े तीन बजे लड़कों और लड़कियों को एक ही कमरे में पातीं। एक बार उन्होंने जीव विज्ञान के प्रयोगशाला सहायक को हमारी कक्षा के पास स्थित प्रयोगशाला में बंद पाया और पाया कि ताले की चाभी गायब हो चुकी है। दूसरी बार कक्षा के हरेक बस्ते में कपड़े धोने का पाउडर मिला। हमारे अपने खेलकूद सप्ताह के दौरान कुछ ऐसी घटनाएं होने के प्रमाण मिले जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट जगत में 'मैच-फिक्सिंग' जैसा कहा जा सकता था। लड़कों के बाथरूम में किसी छात्रा की 'काली ब्रा' पर कोई टिप्पणी का उन्हें पता चला या उन्होंने पाया कि छत पर उनकी पसंदीदा छात्रा स्कूल की क्रिकेट टीम कप्तान की गोद में बैठी है।

इन तमाम संकेतों ने उनके इस भय की पुष्टि की कि हम 'वास्तविक' दुनिया के प्रलोभनों और खतरों के सम्मुख घुटने

टेक देंगे। सो जब भी कोई शिकायत मिलती वे हमें अधिक नैतिक बनाने के विशाल प्रयास में जुट जातीं। हमारी चार से छह घंटों की सामूहिक कक्षा चर्चाएं, विवाद और स्वीकारोक्तियां होतीं जो कक्षा को विभाजित और खंडित कर डालतीं।

व्यक्तिगत परामर्श सत्र होते जो हमें और ज्यादा नाराज तथा अड़ियल बना डालते। सजा के अधिक पारंपरिक स्वरूप भी थे जैसे निलंबन, सार्वजनिक क्षमा याचना, पद वापस ले लेना और अधिक गंभीर व अपमानजनक फटकार के लिए प्राचार्य के सामने पेशी -- जो सभी हमें और भी विद्रोही बनाते थे।

छात्रों की आपसी चर्चाओं में हम अक्सर अटकल लगाने की कोशिश करते कि वे सिर्फ अपने काम से मतलब क्यों नहीं रखतीं। इतिहास शिक्षिकों के रूप में उनके जिस गुण को हम इतना काबिले तारीफ मानते थे -- कि वे निर्धारित ढांचे में बंधती नहीं हैं -- हम उसकी ही निंदा करते। उन पर 'पंचायती' अथवा राजनीति करने का आक्षेप लगाते। हम उनके चरित्र का विश्लेषण करते और सोचते कि वास्तव में वे कौन हैं, उनकी सच्चाई क्या है? हम उनके लिए ठीक वही करते जो वे हमारे लिए करती थीं -- हम उनके कृत्यों का आकलन करते। हम कभी उन्हें नीरस दकियानूस घोषित करते तो कभी सत्ता की भूखी ठहराते।

यदाकदा हम उनके प्रयासों को छात्र एकता को नष्ट करने वाले मानते, तो कभी उन्हें पक्षपाती करार देते और जब हमारी इकाई परीक्षाओं के अंक सामने आते, हमें मानना पड़ता कि उनके व्यक्तिगत पूर्वाग्रह चाहे कुछ भी हों, उनकी अकादमिक निष्ठा उच्च स्तर की है क्योंकि उनके दिए अंक हमेशा न्यायपूर्ण होते। हम इसी तरह जूझते रहे, शिक्षिका और उसके छात्र और तब बारहवीं की कक्षा की प्रत्येक गौण-सी घटना मानव अस्तित्व के सबसे बड़े नैतिक संकट में तब्दील हो जाती। यह दो वर्ष लंबे धर्मयुद्ध के कम न थे। इस दौरान हमें जो भी दण्ड मिला उसका जिम्मेदार हमने चित्रा मैम और उनकी चालबाजी को ठहराया।

यों हम स्कूल से निकले, चित्रा मैम से हमारे विरोधों को बिना सुलझाए ही। हालांकि दिया अनुष्ठान के दिन हमने झुककर उनके पैर छुए, हममें से कई उनके प्रति अपने दिमाग और दिल के द्वार बंद कर चुके थे (उसी तरह जैसे उस प्रयोगशाला सहायक को ताले में बंद किया था और चाबी गायब कर दी थी), उनके आशीर्वाद और शुभकामनाओं को रूखेपन से स्वीकारे बिना झाड़कर परे कर दिया था।[1]

और तब वह सीधा-सादा संदेश मिला था-- चित्रा मैम की आज मृत्यु हो गई। और हम चित्रा मैम के छात्र-छात्राओं के रूप में बिताए गए समय में पुनः लौटे और हमने फिर से बहस की।

---

1. दिया अनुष्ठान एक वार्षिक आयोजन था जिसमें बारहवीं कक्षा के छात्र-छात्राओं को औपचारिक विदाई दी जाती थी। इसकी मेजबानी प्राचार्य तथा वे सारे कक्षा शिक्षक व विषय शिक्षक करते थे, जिन्होंने उस समूह को पढ़ाया था। छात्रों में इसे लेकर भारी उत्तेजना रहती थी क्योंकि लड़कियां साड़ियां पहनतीं और लड़के थ्री पीस सूट या शेरवानी। प्राचार्य के बाग में माता-पिता को औपचारिक चाय पर आमंत्रित किया जाता और हमें बालन (कैंटीन वाले) के मुफ्त वड़े खाने का इंतजार रहता। शिक्षकों के भाषणों और गीतों के अलावा इस अनुष्ठान का एक सुंदर हिस्सा वह था, जब प्राचार्य अंत में प्रत्येक छात्र को एक-एक दिया देते जिसे हम भारत के विशाल नक्शे की फूलों से सजी रेखाओं के बीच रखते। यह प्रतिज्ञा करते कि हम भारत के जिम्मेदार नागरिकों की तरह अपनी शिक्षा का सकारात्मक उपयोग करेंगे। चित्रा मैम ने ऐसे दर्जनों अनुष्ठानों में हिस्सा लिया होगा।

हममें उनका कुछ अंश था जिसे मिटाने के हमारे तमाम प्रयासों के बावजूद, वयस्क दुनिया के प्रलोभनों का कई वर्षों से सामना करने और उनके समक्ष घुटने टेकने के बावजूद बरकरार था।

विश्लेषण किया और एक बार फिर सबके केन्द्र में वही नन्हीं-सी आकृति थी।

वे वास्तव में क्या थीं, यह समझने को हम फिर से जूझे और सोचा तो अचरज के साथ हमें यह अहसास हुआ कि किशोरावस्था का वह घाव कितना हरा था। हम सबको एक भिन्न ही चित्रा मैम याद थीं और कभी तो उनके कई-कई रूप। हममें उनका कुछ अंश था जिसे मिटाने के हमारे तमाम प्रयासों के बावजूद, वयस्क दुनिया के प्रलोभनों का कई वर्षों से सामना करने और उनके समक्ष घुटने टेकने के बावजूद बरकरार था। वह आखिर क्या था, उसका जवाब शायद हममें से किसी के पास नहीं है। पर हमने याद किया कि जब हममें से एक का विवाह हुआ तो उन्हें आमंत्रित किया गया, उनके आगमन की प्रतीक्षा की गई थी और उनकी अनुपस्थिति पर गौर किया गया। जब किसी दूसरे की तरक्की हुई तो उसके अटे पड़े वकील दिमाग को यह सूझा कि वह जाए और अपनी उस हाई स्कूल शिक्षिका के सामने शेखी बघारे, मानो वह इतिहास की इकाई परीक्षा में अव्वल आया हो। तीसरा यह कल्पना करता कि किसी दिन वह स्कूल के किसी कार्यक्रम में मुख्य अतिथि के रूप में जाएगा और श्रोताओं के बीच बैठी चित्रा मैम के गर्व से भरे चेहरे को देखेगा।

क्या उनकी मृत्यु ने हमें कुछ इस तरह देखने की क्षमता प्रदान की जिस तरह हम उन्हें उनके जीवित रहते कभी देख ही नहीं पाए थे? तब भी नहीं जब हम स्कूल से निकल गए थे। उस दिन के पहले चित्रा मैम को स्वयं से पृथक कर देख ही नहीं पाए थे। उनकी व्यक्तिपरकता या वे दरअसल क्या थीं, हम कभी जान नहीं सकेंगे। हम सबने केवल यही देखा था कि वे हमारे प्रति क्या हैं, उन्होंने हमारे साथ क्या किया? संभवतः अपने शिक्षक को एक भिन्न रूप में जानने के लिए, ऐसे व्यक्ति के रूप में जानने के लिए जिसकी अपनी समस्याएं और अपना इतिहास हो, व्यक्ति को अपने स्कूल की ओर जाना पड़ता है। संभव है कि जैसा व जितना संपर्क चित्रा मैम के साथ स्कूली वातावरण में हमारा था वह इसकी अनुमति ही नहीं देता था।[2]

परन्तु क्या यह आश्चर्यजनक नहीं कि उनके छात्र होते हुए भी उनका जीवन हमारे लिए बिलकुल शून्य था, घोर मौन भरा सिवाय कुछ किस्सों के जो उन्होंने कक्षा में हमें सुनाए थे। हमें तो उनकी आयु तक नहीं मालूम थी; जो स्कूल में एक पसंदीदा खेल रही थी, तब अखबार में छपे मृत्यु संदेश में पढ़ा कि वे 57 वर्ष की आयु में दिवंगत हुईं। मैंने पढ़ते-पढ़ते ही हिसाब लगाया और पता चला कि हम जब पढ़ रहे थे वे 49 साल की थीं।[3]

संभवतः एक और बात का अससास हमें कभी नहीं हुआ। आखिरकार वे स्कूल के द्वारा नियुक्त एक अध्यापिका थीं। वे अपने होम रूम के विद्यार्थियों के व्यवहारों के प्रति स्कूल के अधिकारियों के आगे जवाबदेह होती थीं।

एक ऐसी व्यवस्था में जो शिक्षा, स्कूलिंग और अनुशासन के बारे में खास नजरिए से सोचती है, हम खुद को उस व्यवस्था के संदर्भ में विद्यार्थी के रूप में देखते थे, उसी संदर्भ को

2. चित्रा मैम पर मैंने जो शोक संदेश लिखा और भेजा उसकी प्रतिक्रिया में आशीष रॉय के ये विचार थे।
3. इस लेख पर चर्चा के दौरान मोयूख चैटर्जी ने यह टिप्पणी की।

ध्यान में रखते हुए हमने उन्हें एक अध्यापिका के रूप में नहीं देखा। यदि वे रूढ़िवादी, शुचितावादी, नैतिकतावादी थीं, जैसा कि अक्सर होती थीं तो संभवतः उनका अतीत/अनुभव/दुनिया के प्रति नजरिया/वैचारिक आग्रह (और हां) संदर्भ भी उन्हें वैसा बनाता था, जैसे कि हमारे अपने साथ भी होता है। एक खास तरह के अनुशासन में बंधे ढांचे में, छात्र के रूप में उनके साथ हमारा पदानुक्रम का संबंध था, जिसमें एक अध्यापिका रूप में हम पर वे एक तरह की सत्ता रखती थीं, और हम उनसे घबराते थे -- संभवतः उस समय यह स्वीकारोक्तियां हमारे लिए संभव भी नहीं थीं। पर अब, जब उनकी मृत्यु ने हमें इस अधीनस्थ स्थिति से अंततः मुक्त कर दिया, शायद हम यह समझ सकें कि उनके द्वारा हमारे 'भले' के लिए संरक्षक की भूमिका अदा करना ही हमें बिना अपराधबोध या पश्चाताप के 'बुरा' बनने की छूट देता था। किसी इंसान के लिए यह भूमिका अदा करना अप्रिय ही होता है और सच तो यह है कि कई उनसे खराब लोगों ने यह भूमिका अदा की है।[4]

चित्रा मैम के साथ हमारे संबंध की कहानी, कुछ विशेष छात्रों की एक खास शिक्षक से संबंध की कहानी है और साथ ही एक विशेष शिक्षण प्रणाली में आने वाले टकरावों की भी कहानी है, जिसमें शिक्षा की एक खास तरह की समझ हो तथा अनुशासन, नैतिकता की जो खास तरह की धारणा बनाता है, उसकी कहानी है। परन्तु रोजमर्रा का जीवन अद्‌भुत रूप से पेचीदा होता है कि छात्रों के रूप में तमाम अनुशासनात्मक प्रयासों की आवमानना कर हम उनसे बचते रहे, जो स्कूल में हमारा एकमात्र हथियार था। जब हमें निलंबन की सजा मिलती हम 'सुरक्षित' शैतानियों को मजबूत करते, रोमांस करने के नए स्थान तलाशते और कक्षाओं से कटने और पकड़े जाने से बचने की नई-नई तकनीकें तलाशते और यह सब कर यह सिद्ध करते कि स्कूल व चित्रा मैम अपने श्रेष्ठतम प्रयासों के बावजूद उन अर्थों को कभी नियंत्रित नहीं कर सकेंगे जो हम उनके कृत्यों के निकालते थे। स्कूल द्वारा उठाया गया प्रत्येक अनुशासनात्मक कदम हमारे लिए एक और अवसर मात्र था जिसमें हम स्कूल को छका सकते थे।[5]

क्योंकि चित्रा मैम भी एक इंसान होने की वास्तविकता को प्रतिदिन जीती थीं, उनको भी किसी एक ही रूप में पढ़ा नहीं जा सकता था। उन्हें जो छात्र नापसंद थे और उनसे नाराज हो चुके थे, उन्हें भी उन परीक्षाओं और इम्तिहानों में अच्छे अंक मिलते, जिनके पर्चे वे जांचती थीं। वे अपने सबसे 'खतरनाक' विद्रोही छात्र को 'दिल जीतने वाला' कहतीं, तब भी जब उसे वे कक्षा से बाहर निकाल देतीं। जिस छात्रा को वे स्कूल के दौरान रोमांस करने के नाम पर प्राचार्य के पास ले जातीं, उसे ही अलग बुलाकर यह भी पूछतीं कि उसका क्रिकेट खिलाड़ी दोस्त ठीक तो है और वह रुआंसी क्यों दिख रही है?

हमारी स्मृति सूत्रों में लगी गांठों को खोलना, हमारे स्मृति महल के जालों को झाड़ना, उस अनसुलझे अतीत का सही अर्थ निकालना शायद असंभव है और शायद अनावश्यक भी।

और अतः शायद उस व्यक्ति के शब्दों का सहारा लेना ही श्रेष्ठ हो, जिसे पढ़ाने का तीस वर्ष का अनुभव था -- 'अर्थ की तलाश मत करो, सह-संबंध तलाशो।'

बाद चित्रा मैम, अगर हम इन संबंधों को पहले देख पाते तो उस विस्मृत दिया अनुष्ठान के बाद उनके पास जरूर लौटते, ताकि उन्हें शिकायत करने, दण्ड देने और हम पर गर्व करने का मौका मिलता।

(मैं मोयूख चैटर्जी, आशीष रॉय, प्रशांत झा, उदय खारे, संबुद्ध दत्त तथा नीतू सरीन को अपने विचार और अनुभव मुझसे साझा करने के लिए धन्यवाद देना चाहती हूं। यह आलेख हम सबके अनुभवों के कुछ अंशों को संकलित कर एक ढांचे में बांधने का प्रयास करता है।) ◆

भाषान्तरण : पूर्वा याज्ञिक कुशवाहा

4. उपरोक्त शोक संदेश प्रतिक्रिया में उदय खारे की टिप्पणी।
5. यह टिप्पणी केवल मोयूख चैटर्जी (खिलाड़ी) ही कर सकता था।